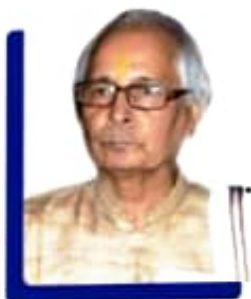


# मिट्टी की साँधी गंध समाई है

पाण्डेय जी के रेखाचित्रों में - डॉ लक्ष्मीकांत पाण्डेय,  
प्रधान संपादक 'नव निकष'



यह वर्ष आचार्य बालकृष्ण पाण्डेय का शताब्दी वर्ष है। पाण्डेय जी की ख्याति एक संपादक, शिक्षाविद, समाज सुधारक के रूप में रही है। 'कान्यकुब्ज मंच' त्रयमासिक पत्रिका के संस्थापक संपादक रहे। कान्यकुब्ज मंच पत्रिका का यह 37वाँ वर्ष है। अपने जीवन काल 2019 ईस्वी तक वे निरंतर पत्रिका के माध्यम से अपने सामाजिक-सांस्कृतिक दायित्व का निर्वाह करते हुए भारतीय संस्कृति का विस्तार करते रहे। एक समाज सुधारक और पत्रकार के रूप में तो उनकी भूमिका रही ही है, उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से भी जीवन और जगत के विराट अनुभव क्षेत्र को प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता पूर्व के भारत के वे साक्षी रहे हैं। उनका जन्म 1923 ईस्वी में हुआ जब देश पराधीन था। एक समाज सुधारक के रूप में उन्होंने उस युग के भारतीय समाज, विशेषतः भारत के ग्राम्य-जीवन को बहुत निकट से देखा-परखा था। उनके बालमन पर उसका गहरा प्रभाव पड़ा। ग्रामीण जीवन में अशिक्षा, अंधविश्वास, शोषण को उन्होंने निकट से देखा था। उनका संवेदनशील मन उन्हें आंदोलित करता रहा। उस समाज की पीड़ा ग्राम जीवन को उन्होंने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है।

आचार्य बालकृष्ण पाण्डेय का साहित्य पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होता रहा है। कानपुर उनके युग में साहित्यिक गतिविधियों का केंद्र रहा। पं गया प्रसाद शुक्ल सनेही, हितैषी जैसे रचनाकारों के माध्यम से हिंदी कविता का एक नए युग में प्रसार हो रहा था। कानपुर की पत्रकारिता का भी उस युग में अपना महत्व रहा। बैसवारा की साहित्यिक विरासत पाण्डेय जी को दाय में मिली थी।

'कान्यकुब्ज-कुल-कुलंगार' कहने वाले निराला की वेदना को भी पाण्डेय जी ने समझा था। अतः उन्होंने कान्यकुब्ज क्षेत्र, विशेष रूप से ब्राह्मण समाज में व्याप्त अनेक कुप्रथाओं को समाप्त करने के लिए संघर्ष प्रारंभ किया। 'कान्यकुब्ज मंच' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने समाज को संगठित किया तथा अपने चिंतन और अनुभवों को वैचारिक अभिव्यक्ति लेखों और संपादकीय टिप्पणियों के माध्यम से दी। वही अनुभव उनके सृजनात्मक साहित्य का आधार बना। वे ग्रामीण जीवन के संपर्क में आए। वहां उन्हें तमाम माटी की मूर्तियाँ मिलीं। माटी की मूर्तियों का अपना महत्व होता है वह अनगढ़ होती है। एक कुशल

कुंभकार माटी की मूर्तियों को संजीवनी देकर उन्हें जीवंत बना देता है। पाण्डेय जी को ग्रामीण परिवेश में रहने, उन्हें देखने-समझने, परखने का अवसर बचपन से मिला था। गांव की जिंदगी के कटु यथार्थ को उन्होंने देखा और भोगा था। उनके बाल मन पर उन अशिक्षित जनों की विपन्नता में भी व्याप्त जिजीविषा, आह के बीच जीवन के आनंद और उल्लास का गहरा प्रभाव पड़ा। सृजन के लिए उस ग्रामीण परिवेश में उन्हें बनी बनाई भूमि मिली और उस मिट्टी से ही उन्होंने तमाम ऐसे चित्र बना दिए जिनमें जीवन के नाना रंग मिलते हैं। स्वतंत्रता पूर्व भारत के कृषक और ग्रामीण समाज के ऊपर मुंशी प्रेमचंद ने कथाओं के माध्यम से बहुत कुछ लिखा है, पर वह कथा नायक हैं, जिनके निर्माण में रचनाकार को कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है। पाण्डेय जी ने ग्रामीण समाज के जीवन चरित्रों को अपने रेखाचित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इनमें कल्पना का लेशमात्र नहीं है, यह चरित्र किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व भी नहीं करते। पाण्डेय जी के रेखाचित्रों में आए पात्र अपने आसपास मिले हैं। जिन्हें रचनाकार ने अपनी लेखनी से अमृत प्रदान किया है।

'वे दिन - वे लोग' पाण्डेय जी के ऐसे ही रेखा चित्रों का संकलन है। ये पत्र-पत्रिकाओं में भले ही प्रकाशित होते रहे, समय रूप से पुस्तकाकार रूप में पहली बार उनके सुपुत्र श्री आशुतोष पाण्डेय द्वारा समेकित रूप से प्रकाशित हो रहा है। इस समेकित रूप का अपना ऐतिहासिक महत्व है। इस पुस्तक के रेखाचित्र पाण्डेय जी के अनुभव क्षेत्र से जुड़े उस युग का बोध कराता है जो आज के समाज के लिए एक कल्पना लोक प्रतीत होता है। आज की पीढ़ी को अपने पूर्वजों के संघर्ष से परिचित होने का अवसर तो मिलेगा ही, हमारी तमाम प्राचीन परंपराओं को इससे जानने का अवसर मिलेगा।

एक वयोवृद्ध रचनाकार की लेखनी 100 वर्षों का इतिहास होती है। वह केवल अपनी पीढ़ी से अवगत नहीं करता, अपने माता-पिता से प्राप्त अनुभवों को भी संचित कर उन्हें भी प्रस्तुत करता है।

'वे दिन - वे लोग' के रेखाचित्र उन्हीं अनुभवों की संचित ज्ञान-राशि हैं, जिनमें विगत सौ वर्षों का भारतीय ग्राम्य जीवन



समाहित है। ये केवल व्यक्तिचित्र नहीं हैं, इन चित्रों के माध्यम से भारतीय ग्राम्य जीवन का वह परिवेश उभरा है, जिससे आज हम वंचित हो गए हैं। इन्हें हम आंचलिक रेखाचित्र कह सकते हैं। आंचलिक रेखाचित्रों का प्रारम्भ सबसे पहले लोकसाहित्य के विद्वान डॉ कृष्णदेव उपाध्याय ने किया। उन्होंने भोजपुर क्षेत्र के ग्रामीण जनों के माध्यम से भोजपुरी ग्राम्य परिवेश का था, जो आंचलिक रेखाचित्र के रूप में प्रकाशित हुए हैं। पं बालकृष्ण पाण्डेय के रेखाचित्र अवध क्षेत्र की लोकसंस्कृति और लोकजीवन को प्रस्तुत करते हैं। अतः इन रेखाचित्रों के माध्यम से अवधी लोकचेतना को प्रस्तुत कर लेखक ने एक अंचल को प्राणवान बना दिया है। अवध अंचल के रेखाचित्रों के इतिहास में यह प्रथम प्रयास है। यहां के लोकजीवन, पर्व, त्योहार, संस्कार, रीति-रिवाज, प्रथाएं, कृषि सब इन रेखाचित्रों में समाहित है। पाण्डेय जी के रेखाचित्रों में माटी की सोंधी गंध के साथ आम और महुये की सुवास और मिठस है।

रेखाचित्रों के अधिकांश चरित्र ग्रामीण परिवेश के हैं। 'मां कस्तूरा' के रूप में प्रस्तुत पहला रेखाचित्र केवल 'कस्तूरा' का रेखाचित्र नहीं है, वह संघर्षों में पली-बढ़ी उस 'मां' का चित्र है, जो आज भी अवध के ग्रामीण जीवन में नारी के संघर्ष की कथा कहता है। आज के स्त्री विमर्श को लेकर होने वाली बहसों जहां केवल आधुनिकाओं के समानाधिकार की चर्चा करता है, वहीं ये ग्रामीण स्त्रियां अधिकार की जगह कर्तव्य को सर्वोपरि मानकर साधिका रहती हैं। वे अपने दायित्व के प्रति सजग हैं। आज के स्त्री विमर्शवादियों को नारी की यह पीड़ा नहीं सुनाई देगी। भारतीय नारी को इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए रचनाकार कहता है- 'सबकी दुनिया बसाने वाली मां का संसार सूना था। बेटियों के अपने परिवार हैं और बेटों की अपनी समस्याएं हैं। पूरे घर को एक करने वाली का संसार कितना सिमट गया है। बस एक चारपाई, उसी में दो-चार गूदड़। अपना कहने को एक

लोटा भी उसके पास नहीं है।' कहने को 'मां कस्तूरा' एक रेखाचित्र है किन्तु अवध क्षेत्र के अधिकांश गांवों में यह चरित्र सामान्य है।

पाण्डेय जी के रेखाचित्र केवल व्यक्तियों का उल्लेख नहीं करते। वे गांव में आए परिवर्तन और वहां की सामूहिकता में आए ह्रास से भी चिंतित हैं। वे लिखते हैं- 'चौपालें सूनी हैं, अलाव फीके हैं, चबूतरे पर लगने वाला दरबार, पनघट की ठिठोली, खेत खलिहान का परिहास, बगीचे की धमा-चौकड़ी, डांड-मेड की पूंछताछी समाप्त हो गई। सभ्यता के नए अंकुर पनप रहे हैं। वीडियो, टीवी, मारुति, सुजुकी जींस और बूटों के बीच वह आत्मीयता, सौहार्द मिट गया, जिसके लिए देवता यहां आने को तरसते थे।'

एक समीक्षक के रूप में देखें तो पाण्डेय जी के रेखाचित्रों में वर्तमान समीक्षा के सारे विमर्श उपस्थित हैं। उनमें दलित-विमर्श, नारी-विमर्श, सांस्कृतिक-विमर्श के साथ गहरा इतिहास बोध है। हम इस नई सैद्धांतिकी के आधार पर समय और समाज के परिपेक्ष में रचनाओं का मूल्यांकन कर सकते हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि लेखक का मन इन विमर्शों से मुक्त है। वे अपने रेखाचित्रों में केवल मानव स्वभाव को केंद्र में रखते हैं। इन रेखाचित्रों में न स्त्री है, न दलित, वे सब केवल मनुष्य हैं, जिनमें स्वाभाविक गुण दोष हैं। वे सब कुछ छोड़ सकते हैं पर अपने मनुष्य को नहीं मरने देते। वह दुख-दर्द में भी सुख और आनंद खोज लेते हैं। रचनाकार को यही चिंता है कि गांव को स्वर्ग बनाने वाला वह मनुष्य विकास की अंधी दौड़ में मर रहा है। रोशनी आई है पर अंधेरे के साथ। बाहर का उजाला भीतर की रोशनी को नष्ट कर रहा है। उनकी चिंता है- 'आज का ग्रामीण अत्यंत निरीह और असुरक्षित है। एक ऐसे सूक्ष्म आतंक ने चारों ओर से उसे कस लिया है, जिससे वह निस्तेज होकर रह गया है।' □ - 9452694078